[2025] 4 एस.सी.आर. 1409: 2025 आई.एन.एस.सी. 517

मंजुनाथ तिरकप्पा मलगी एवं अन्य

बनाम

गुरुसिद्धप्पा तिरकप्पा मलगी (मृतक वारिसों के माध्यम से)

(सिविल याचिका संख्या 5373/2025)

(21 अप्रैल 2025)

[सुधांशु धूलिया* और अहसानुद्दीन अमानुल्लाह, न्यायाधीश]

विचार के लिए मुद्दा

क्या किसी समझौता डिक्री (कम्प्रोमाइज़ डिक्री) को चुनौती देने के लिए एक नया वाद दायर किया जा सकता है?

संक्षिप्त मुक़दमा

नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 - ऐसा मुकदमा जिसमें दावा किया गया कि वादित संपत्ति पैतृक संपत्ति नहीं है। निर्णय: वादित संपत्ति दादी द्वारा पारिवारिक निधियों का उपयोग कर अपीलकता के पिता के नाम पर खरीदी गई थी, अतः यह संयुक्त पारिवारिक संपत्ति मानी गई।
अपीलकर्ताओं का तर्क: अपीलकर्ताओं ने यह तर्क दिया कि चूंकि वादित संपत्ति पैतृक संपत्ति नहीं है, इसलिए इसे उनके पिता, दादा और पिता के भाइयों के बीच विभाजित नहीं किया जा सकता। अपीलकर्ताओं ने आगे यह तर्क दिया कि चूंकि वर्ष 1974 में हुए विभाजन के समय वादित संपत्ति को ध्यान में नहीं रखा गया था, इसलिए अपीलकर्ताओं के दादा ने विभाजन के लिए मुकदमा दायर किया, जिसमें वादित संपत्ति को अपीलकता के पिता, उनके भाइयों और दादा के बीच समान रूप से विभाजित किया गया। यह आदेश समझौता निर्णय के रूप में पारित किया गया, जिसके तहत अपीलकता के पिता को उनके हिस्से का भाग मिला। इसके पश्चात,

अपीलकर्ताओं ने इस समझौता निर्णय को चुनौती दी, यह बताते हुए कि पक्षों के बीच किया गया यह समझौता, जिसमें उनके पिता भी शामिल थे, जबरदस्तीपूर्ण था।

---

*लेखक

निर्णय: अपीलकर्ताओं ने यह साबित करने में असफल रहे कि वादित संपत्ति पैतृक संपत्ति नहीं है - यद्यपि वादित संपत्ति अपीलकता के पिता के नाम पर खरीदी गई थी, यह पारिवारिक निधियों से खरीदी गई थी और इस प्रकार यह संयुक्त पारिवारिक संपत्ति है। [अनुच्छेद 7]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 23 नियम 3A - समझौता आदेश को चुनौती देने के लिए नई याचिका नहीं दायर की जा सकती।

निर्णय: समझौता डिक्री (Compromise Decree) को अपीलकर्ता के पिता ने कभी चुनौती नहीं दी - अपीलकर्ताओं ने समझौता डिक्री को रद्द करने और संपत्ति के विभाजन की मांग करते हुए नई याचिका दायर की - उक्त समझौता डिक्री को चुनौती देने का आधार यह था कि अपीलकर्ता के पिता को उनके भाइयों और पिता द्वारा उक्त समझौते में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया गया - समझौता डिक्री को नई याचिका दायर कर चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि CPC के आदेश 23, नियम 3A के तहत सहमति डिक्री (Consent Decree) की वैधता के आधार पर नई याचिका दायर करने पर रोक है। [पैरा 9,11]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - समझौता डिक्री के खिलाफ उपाय यह है कि समझौता डिक्री को वापस लेने के लिए आवेदन दायर किया जाए।

निर्णय: यह मान लिया जाए कि अपीलकर्ताओं के पिता को उनके भाइयों और पिता (अपीलकर्ताओं के दादा) द्वारा समझौते में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया गया, जिससे सहमति डिक्री पारित हुई, तब भी एक नई मुकदमा दायर करना वैध उपाय नहीं है- अपीलकर्ताओं के पिता को डिक्री को वापस लेने के लिए आवेदन दायर करना चाहिए था- यदि अपीलकर्ता के पिता ने कभी भी डिक्री को वापस लेने के आवेदन के माध्यम से चुनौती नहीं दी, तो अब अपीलकर्ता उसी पर सवाल नहीं उठा सकते। [अनुच्छेद 12]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 2 नियम 2- अपीलकर्ताओं के लिए दावा उठाने पर प्रतिबंध

निर्णय: अपीलकर्ता का मुकदमा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 नियम 2 के तहत बाधित है क्योंकि इसमें उन सभी संपत्तियों को शामिल नहीं किया गया था जो उनके पिछले मुकदमे का हिस्सा थीं- वर्तमान मुकदमा निर्माणात्मक रेस जुडिकाटा (constructive res judicata) की श्रेणी में भी आता है क्योंकि अपीलकर्ता उस संपत्ति के विभाजन के संबंध में अपना दावा पुनः प्रस्तुत नहीं कर सकते, जिसे पहले ही विभाजित किया जा चुका है। [अनुच्छेद 14]

अधिनियमों की सूची

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

कीवर्ड्स की सूची

रिकॉल आवेदन; समझौता डिक्री; सिविल प्रक्रिया संहिता; आदेश 23 नियम 3A; संयुक्त परिवार की संपत्ति; पैतृक संपत्ति; सहमति डिक्री; नया मुकदमा; निर्माणात्मक रेस जुडिकाटा।

केस का उद्भव

नागरिक अपीलीय अधिकार क्षेत्र: नागरिक अपील संख्या 5373/2025

कर्नाटक उच्च न्यायालय धारवाड़ सर्किट बेंच के 23.09.2022 के निर्णय एवं आदेश से - आरएफए संख्या 1295/2007 में।

पक्षों के लिए उपस्थितियाँ

अपीलकर्ता के लिए अधिवक्ता :
सी.एम. अंगड़ी, रामेश्वर प्रसाद गोयल।

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:
संकेत एम. येनागी, निखिल जैन, चिन्मय देशपांडे, अनिरुद्ध संगनेरिया।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

<u>आदेश</u>

सुधांशु धूलिया, न्यायाधीश

अनुमति प्रदान की गयी|

2. वर्तमान अपील शुद्ध सिविल कार्यवाहियों से संबंधित है, जो वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा वर्ष 2003 में प्रारंभ की गई थीं। अपीलकर्ताओं ने एक याचिका दायर की थी जिसमें उत्तरदाताओं (प्रत्युत्तरी) के बीच किए गए समझौते की डिक्री को शून्य और अमान्य घोषित करने तथा अपीलकर्ताओं पर बाध्यकारी न होने का अनुरोध किया गया था। इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ताओं ने पूर्वजों की संपत्ति में एक निश्चित हिस्से का विभाजन भी मांगा, जो उत्तरदाताओं के कब्जे में था। अधिवक्ता न्यायालय ने अपीलकर्ताओं की याचिका को 02.03.2007 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया। इसके बाद, अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय में पहली अपील दायर की, जिसे भी 23.09.2022 के विवादित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

3. चूंकि वर्तमान मामला विभिन्न याचिकाओं से संबंधित है, हम यहां संक्षेप में तथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं, जो इस प्रकार हैं:

> (क) सन् 1974 में, भाइयों और उनके पिता यानी अपीलकर्ताओं के पिता, उनके पांच भाई और अपीलकर्ताओं के दादा के बीच पारिवारिक विभाजन हुआ, और पारिवारिक संपत्ति का विभाजन किया गया, जिसे पंजीकृत किया गया।
>
> (ख) इसके बाद, सन् 1998 में, अपीलकर्ताओं ने अपने पिता और माता के विरुद्ध एक मुकदमा (मूल मुकदमा संख्या 219/1998) दायर किया, जिसमें वे पूर्वजों की संपत्ति का सीमांकन करके विभाजन और बंटवारा चाहते थे। हालांकि, इस मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान, अपीलकर्ताओं के दादा ने एक अलग मुकदमा (मूल मुकदमा संख्या 219/1998) दायर किया जिसमें उनके छह पुत्र, जिनमें अपीलकर्ताओं के पिता भी शामिल थे, पक्षकार थे। इसमें यह बताया गया कि संयुक्त पारिवारिक संपत्ति का एक हिस्सा (7 एकड़ भूमि) 1974 के विभाजन में गलती से शामिल नहीं किया गया था। 18.01.2000 के आदेश द्वारा, ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादियों के बीच समझौते के आधार पर डिक्री पारित की, जिसके तहत वह 7 एकड़ भूमि अपीलकर्ताओं के पिता, उनके पांच

भाईयों और अपीलकर्ताओं के दादा के बीच समान रूप से विभाजित की गई। परिणामस्वरूप, 7 एकड़ में से 1 एकड़ अपीलकर्ताओं के पिता के हिस्से में आया।

(ग) 18.01.2000 की समझौता डिक्री को ध्यान में रखते हुए, ट्रायल कोर्ट ने 02.08.2002 के आदेश के माध्यम से अपीलकर्ताओं के विभाजन मुकदमे (मूल मुकदमा संख्या 219/1998) को डिक्री प्रदान की, और अपीलकर्ताओं को उनके पिता की संपत्ति के आधे हिस्से का लाभ मिला। परिणामस्वरूप, दोनों मामलों का निपटारा हो गया। 1999 का मुकदमा 18.01.2000 को समझौता डिक्री के आधार पर निपटाया गया और बाद में 1998 का मुकदमा 02.08.2002 को 1999 के मुकदमे में पारित समझौता डिक्री के आधार पर निपटाया गया।

(घ) यहीं से मुख्य विवाद उत्पन्न हुआ। वर्ष 2003 में, अपीलकर्ताओं ने वर्तमान मुकदमा (संख्या1/2003) दायर किया, जिसमें 18.01.2000 की समझौता डिक्री को शून्य और अवैध घोषित करने की मांग की गई, क्योंकि अपीलकर्ताओं के अनुसार 7 एकड़ भूमि उनके पिता की व्यक्तिगत संपत्ति थी और वह पैतृकसंपत्ति नहीं थी। अतः, अपीलकर्ताओं का दावा है कि उन्हें उस 7 एकड़ भूमि के आधे हिस्से का हक है (जिसे आगे 'मुकदमे की संपत्ति' कहा गया है)। यह वही मुकदमा है जिस पर हम वर्तमान अपील में विचार कर रहे हैं। अपीलकर्ताओं का यह मुकदमा ट्रायल कोर्ट द्वारा खारिज किया गया और इसके बाद अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पहली अपील को भी उच्च न्यायालय ने 23.09.2022 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया। अब अपीलकर्ता हमारे समक्ष हैं।

4. यह अपीलकर्ताओं का मामला है कि वे तिरकप्पा गुरुसिद्धप्पा माळगी के पुत्र हैं, जिन्होंने अपने पिता (अपीलकर्ताओं के दादा) और भाइयों (अपीलकर्ताओं के चाचा) के साथ साज़िश करके अपीलकर्ताओं के अधिकारों से उन्हें वंचित कर दिया। अपीलकर्ता तर्क करते हैं कि मुकदमे की संपत्ति (7 एकड़ भूमि) उनके दादी द्वारा उनके पिता के नाम पर खरीदी गई थी, जब वह नाबालिग थे, और इसलिए यह संपत्ति 1974 के विभाजन में शामिल नहीं की गई थी। हालांकि, अपीलकर्ताओं के अनुसार, उनके पिता ने अपने पिता और भाइयों के साथ मिलकर समझौता डिक्री के माध्यम से मुकदमे की संपत्ति का विभाजन करवाया, जिससे अपीलकर्ताओं के हिस्से में

कमी आ गई। वे आगे यह भी तर्क करते हैं कि यह समझौता डिक्री रद्द की जानी चाहिए क्योंकि उन्हें उस मुकदमे में पार्टी नहीं बनाया गया था, जिसमें यह समझौता डिक्री पारित की गई थी।

5. इसके विपरीत, दूसरी पक्ष यह तर्क देगा कि अपीलकर्ताओं के हितों का प्रतिनिधित्व उनके पिता ने उस मुकदमे में किया था, जिसमें समझौता डिक्री पारित की गई। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि निचली अदालत (ट्रायल कोर्ट) और उच्च न्यायालय ने सही कहा कि अपीलकर्ताओं का मुकदमा, पुनर्विवाद (res judicata) के सिद्धांतों के साथ-साथ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे यहां 'CPC' कहा गया है) के आदेश 2 नियम 2 और आदेश 23 नियम 3A के तहत बाधित था।

6. हमने दोनों पक्षों की दलीलों को सुना और हमारे समक्ष उपस्थित सामग्री का अवलोकन किया है।

7. नीचे की अदालतों में अपीलकर्ताओं के विरुद्ध समवर्ती निष्कर्ष हैं। अपीलकर्ता जोर देकर तर्क देते हैं कि चूँकि विवादित संपत्ति पैतृक संपत्ति नहीं है, इसलिए इसे उनके पिता, दादा और पिता के भाइयों के बीच विभाजित नहीं किया जा सकता। हालांकि, अपीलकर्ताओं ने यह साबित करने में पूरी तरह असफल रहे कि विवादित संपत्ति पैतृक संपत्ति का हिस्सा नहीं है। अभिलेखों का अध्ययन करने के बाद, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ट्रायल कोर्ट ने सही निर्णय लिया कि यद्यपि विवादित संपत्ति अपीलकर्ताओं के पिता के नाम से खरीदी गई थी, यह परिवार के कोष से खरीदी गई थी और इसलिए यह संयुक्त पारिवारिक संपत्ति है।

8. चूँकि विवादित संपत्ति को 1974 के विभाजन के समय विचार में नहीं लिया गया था, अपीलकर्ताओं के दादा ने विभाजन के लिए एक याचिका दायर की जिसमें विवादित संपत्ति को अपीलकर्ताओं के पिता, उनके भाइयों और अपीलकर्ताओं के दादा के बीच समान रूप से विभाजित किया गया। अपीलकर्ताओं के हितों का प्रतिनिधित्व उनके पिता द्वारा किया गया, और समझौता डिक्री के अनुसार, अपीलकर्ताओं के पिता ने अपनी हिस्सेदारी प्राप्त की। इसके पश्चात, अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिका संख्या 219/1998 में 02.08.2002 को पारित डिक्री के अनुसार, अपीलकर्ताओं को भी उनके पिता की हिस्सेदारी का आधा हिस्सा संयुक्त रूप से

प्राप्त हुआ। दूसरे शब्दों में, अपीलकर्ताओं को 0.5 एकड़ भूमि पर संयुक्त रूप से अधिकार दिया गया। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि अपीलकर्ता इसे धोखाधड़ी का दावा कैसे कर सकते हैं।

9. अपीलकर्ताओं द्वारा दायर वाद (संख्या 219/1998) में 02.08.2002 को पारित डिक्री के माध्यम से, अपीलकर्ताओं के पिता को 1974 के विभाजन तथा समझौता डिक्री के तहत प्राप्त संपूर्ण हिस्से का आगे अपीलकर्ताओं और उनके पिता के बीच विभाजन कर दिया गया। इस डिक्री को अपीलकर्ताओं द्वारा कभी चुनौती नहीं दी गई। इसके बावजूद, उन्होंने वर्ष 2003 में एक नया वाद दायर कर समझौता डिक्री को निरस्त किए जाने की प्रार्थना की तथा विवादित संपत्ति के पुनः विभाजन की मांग की। उक्त समझौता डिक्री को चुनौती देने का अपीलकर्ताओं का आधार यह है कि अपीलकर्ताओं के पिता को उनके भाइयों और पिता द्वारा उक्त समझौते में प्रवेश करने के लिए बाध्य किया गया था।

10. अब हम सहमति (कंसेंट) डिक्री को नियंत्रित करने वाले विधि सिद्धांत पर विचार करें। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 23 नियम 3, जो कि समझौता डिक्री से संबंधित है, इस प्रकार है:

> "3. **वाद का समझौता**.– जब न्यायालय को इस बात का संतोष हो जाता है कि किसी वाद का निपटारा पूर्णतः या आंशिक रूप से किसी विधिसम्मत करार या समझौते द्वारा किया गया है, जो लिखित हो और पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित हो, अथवा जहाँ प्रतिवादी वाद के विषय-वस्तु के संपूर्ण या किसी भाग के संबंध में वादी को संतुष्ट कर देता है, तब न्यायालय ऐसे करार, समझौते या संतोष को अभिलेखित किए जाने का आदेश देगा और उसके अनुसार डिक्री पारित करेगा, जहाँ तक वह वाद के पक्षकारों से संबंधित हो, चाहे करार, समझौते या संतोष की विषय-वस्तु वाद की विषय-वस्तु के समान हो या न हो:
>
> परंतु यह कि जहाँ एक पक्ष द्वारा यह आरोप लगाया जाए और दूसरे पक्ष द्वारा उसका खंडन किया जाए कि कोई समायोजन या संतोष प्राप्त हो गया है, वहाँ न्यायालय उस प्रश्न का निर्णय करेगा; किंतु उस प्रश्न का निर्णय करने के उद्देश्य से कोई स्थगन

प्रदान नहीं किया जाएगा, जब तक कि न्यायालय अभिलेखित किए जाने वाले कारणों से ऐसा स्थगन प्रदान करना उचित न समझे।

व्याख्या.– कोई भी ऐसा समझौता या समझौता-पत्र, जो भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) के अंतर्गत शून्य या शून्यकरणीय हो, इस नियम के अर्थ के भीतर विधिसम्मत नहीं माना जाएगा।"

अतः उपर्युक्त प्रावधान के पाठ से यह स्पष्ट होता है कि किसी समझौते के आधार पर डिक्री पारित करने से पूर्व, न्यायालय को यह संतुष्ट होना आवश्यक है कि वाद का निपटारा एक विधिसम्मत समझौते द्वारा किया गया है। एक बार जब न्यायालय इस प्रकार की संतुष्टि के पश्चात् समझौता डिक्री पारित कर देता है, तो उस डिक्री को अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती, क्योंकि समझौता डिक्री के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं होती।[1]

---

1. **सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3):** पक्षकारों की सहमति से न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी।

11. इसके अतिरिक्त, समझौता डिक्री को एक नवीन वाद दायर करके चुनौती नहीं दी जा सकती, क्योंकि दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 23 नियम 3A के अंतर्गत समझौता (सहमति) डिक्री की वैधता के आधार पर उसे चुनौती देने हेतु नवीन वाद दायर करने पर स्पष्ट रूप से प्रतिबंध है, जो इस प्रकार है:

"**3-A. वाद पर प्रतिबंध**– किसी भी डिक्री को इस आधार पर निरस्त करने हेतु कोई वाद दायर नहीं किया जाएगा कि जिस समझौते पर वह डिक्री आधारित है, वह विधिसम्मत नहीं था।"

12. समझौता डिक्री के विरुद्ध एकमात्र उपाय **रिकॉल आवेदन** दायर करना है। इस न्यायालय ने *पुष्पा देवी भगत बनाम राजिंदर सिंह*, (2006) 5 **एससीसी** 566 में विधि की स्थिति को निम्नानुसार संक्षेपित किया है:

"17. आदेश 23 के संशोधित उपबंधों से जो विधिक स्थिति उभरकर आती है, उसे इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है:

(i) धारा 96(3) सीपीसी में निहित विशिष्ट प्रतिबंध को दृष्टिगत रखते हुए, सहमति डिक्री के विरुद्ध कोई अपील संधारणीय नहीं है।

(ii) आदेश 43 नियम 1 के खंड (m) के विलोपन के परिणामस्वरूप, समझौते को अभिलेखित करने (या उसे अभिलेखित करने से इंकार करने) संबंधी न्यायालय के आदेश के विरुद्ध कोई अपील संधारणीय नहीं है।

(iii) नियम 3-A में निहित प्रतिबंध के मद्देनजर, यह कहते हुए कि समझौता विधिसम्मत नहीं था, किसी समझौता डिक्री को निरस्त करने के लिए कोई स्वतंत्र वाद दायर नहीं किया जा सकता।

(iv) सहमति डिक्री प्रतिषेध (एस्टॉपल) के रूप में कार्य करती है और तब तक वैध एवं बाध्यकारी रहती है, जब तक कि उसे उसी न्यायालय द्वारा, जिसने सहमति डिक्री पारित की है, आदेश 23 नियम 3 के प्रावधान के अंतर्गत दायर आवेदन पर पारित आदेश द्वारा निरस्त न कर दिया जाए।

अतः, सहमति डिक्री से बचने के लिए किसी पक्षकार के पास एकमात्र उपाय यह है कि वह उसी न्यायालय के समक्ष जाए, जिसने समझौते को अभिलेखित किया और उसके आधार पर डिक्री पारित की, तथा यह स्थापित करे कि वास्तव में कोई समझौता हुआ ही नहीं था। ऐसी स्थिति में, जिस न्यायालय ने समझौते को अभिलेखित किया है, वही यह प्रश्न विचार कर निर्णय करेगा कि कोई वैध समझौता था या नहीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि सहमति डिक्री मूलतः पक्षकारों के बीच हुआ एक अनुबंध मात्र होती है, जिस पर न्यायालय की स्वीकृति की मुहर लगी होती है। सहमति डिक्री की वैधता पूर्णतः उस समझौते या अनुबंध की वैधता पर निर्भर करती है, जिसके आधार पर वह बनाई गई है..."

अतः, भले ही हम अपीलकर्ताओं की इस दलील को स्वीकार कर लें कि उनके पिता को उनके भाइयों और पिता (अपीलकर्ताओं के दादा) द्वारा समझौता करने के लिए बाध्य किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप सहमति डिक्री पारित हुई, फिर भी नया वाद दायर करना कोई वैध उपाय

नहीं है। ऐसी स्थिति में, अपीलकर्ताओं के पिता को उसी न्यायालय के समक्ष रिकॉल आवेदन दायर करना चाहिए था, जिसने डिक्री पारित की थी। अपीलकर्ताओं के पिता ने ऐसा कभी नहीं किया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने सहमति डिक्री को स्वीकार किया था और उसकी वैधता पर कभी प्रश्न नहीं उठाया।

13. इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ताओं की यह दलील कि विवादित संपत्ति संयुक्त पारिवारिक संपत्ति नहीं है बल्कि उनके दादी ने इसे अपीलकर्ताओं के पिता के नाम पर खरीदा था और अब उनके रिश्तों में खटास आ जाने के कारण वह अपीलकर्ताओं को संपत्ति से वंचित करना चाह रहे हैं, उनके लिए कोई मददगार नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि अपीलकर्ताओं की दादी ने विवादित संपत्ति अपीलकर्ताओं के पिता के नाम पर खरीदी थी, और यह पैतृक संपत्ति का हिस्सा नहीं है, तो ऐसी स्थिति में वह संपत्ति वर्तमान में अपीलकर्ताओं के पिता की होगी, क्योंकि वह जीवित हैं, और वे अपनी इच्छा अनुसार इसे इस्तेमाल या परित्याग करने के लिए स्वतंत्र हैं। फिर भी, यदि अपीलकर्ताओं के पिता को सहमति डिक्री के खिलाफ कोई आपत्ति नहीं है, तो हम यह समझने में असमर्थ हैं कि अपीलकर्ताओं को इसे चुनौती देने की अनुमति कैसे दी जा सकती है।

14. किसी भी स्थिति में, अपीलकर्ताओं के मामले में कोई ठोस आधार नहीं है। अपीलकर्ताओं का मुकदमा ऑर्डर 2 नियम 2 सीपीसी के तहत भी प्रतिबंधित है क्योंकि इसमें उन सभी संपत्तियों को शामिल नहीं किया गया था जो उनके पूर्व के मुकदमे का हिस्सा थीं। वर्तमान मुकदमा भी न्यायोचित पूर्वनिर्णय (res judicata) या निर्माणात्मक न्यायोचित पूर्वनिर्णय (constructive res judicata) के सिद्धांतों से प्रभावित है, क्योंकि अपीलकर्ता पहले से विभाजित संपत्ति के संबंध में अपना दावा फिर से नहीं उठा सकते। निचली अदालत और उच्च न्यायालय ने इन मुद्दों का विस्तार से निराकरण किया है। हमें इसमें और विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमने पहले ही अपने तर्क प्रस्तुत कर दिए हैं कि अपीलकर्ताओं का मुकदमा किसी भी आधारहीनता से परिपूर्ण है।

15. उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, हमें उच्च न्यायालय द्वारा 23.09.2022 को पारित अपीलों के विरोधी आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। अतः, यह अपील खारिज की जाती है।

16. अंतरिम आदेश, यदि कोई हैं, उन्हें समाप्त किया जाता है।

17. अवशिष्ट आवेदन (यदि कोई हो) निस्तारित किए जाते हैं।

मामले का परिणाम: अपील खारिज।

† हेडनोट्स द्वारा: मुकुंद पी. उन्नी, मानद सहायक संपादक
(सत्यापित द्वारा: कनु अग्रवाल, अधिवक्ता)

यह अनुवाद पियूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|